मार्क्सवाद
परिचय माला 5

# समाजवादी जनवाद

शिव वर्मा

गार्गी प्रकाशन

# समाजवादी जनवाद

लेखक
शिव वर्मा

# समाजवादी जनवाद

समाजवादी जनवाद और पूँजीवाद जनवाद दोनों में जमीन आसमान का अन्तर है। इस अन्तर पर जोर देते हुए 1919 में लेनिन ने लिखा था : "पूँजीपति और उसके समर्थक हम पर यह आरोप लगाते हैं कि हमने जनवाद का उल्लघंन किया है। इसके खिलाफ हम जोर देकर कहते हैं कि सोवियत क्रान्ति ने हर दिशा में जनवाद के विकास को अतुलनीय प्रेरणा दी है। जिस जनवाद की हम चर्चा कर रहे हैं वह पूँजीवाद द्वारा पीड़ित जनता तथा मेहनतकशों का जनवाद है अर्थात अधिकांश लोगों का जनवाद है यानी समाजवादी जनवाद है(जो मेहनतकशों के लिए है) वह पूँजीवादी जनवाद से (जो शोषकों, पूँजीपतियों तथा अमीरों के लिए होता है) भिन्न है।"

अपनी बात को और स्पष्ट करते हुए लेनिन ने कहा : पूँजीवादी जनवाद आडम्बर भरे वाक्यों, गम्भीर शब्दों, लम्बे-चौड़े वायदों और स्वतंत्रता तथा बराबरी के बारे में बड़े-बड़े नारों का जनवाद है (ज़रा अपने देश में इंदिरा गांधी के गैर जनवादी कारनामों और समाजवाद, गरीबी हटाओं के लम्बे-चौड़े नारों पर गौर कीजिए-लेखक)। परन्तु वास्तव में यह सब महिलाओं मेहनतकशों और शोषितों की स्वतंत्रता के अभाव और असमानता को छुपाने के लिए केवल एक आडम्बर है।"

"समाजवादी जनवाद इन आडम्बरपूर्ण परन्तु झूठे शब्दों को रद्दी की टोकरी में फेंक देता है और पूँजीवादी जनवादियों, जमींदारों, पूँजीपतियों और अमीर किसानों के पाखण्ड के विरुद्ध, जो कि सट्टे के भावों पर भूखे मजदूरों के आगे फालतू अनाज बेचकर धन को बटोरते हैं, निर्मम लड़ाई का ऐलान करता है।"

पूँजीवादी जनवाद के ढोंगों को खत्म करके समाजवादी जनवाद कायम करने की जररूत पर जोर देते हुए लेनिन ने कहा--

"इस घृणित झूठ का खात्मा होना चाहिए। उत्पीड़ित और उत्पीड़क, शोषित और शोषक में कोई समानता नहीं है और नहीं कभी हो सकती है जब तक स्त्रियों

को पुरुषों के साथ समान कानूनी अधिकार नहीं मिलेंगे, मजदूर की पूँजी के जुए से मुक्ति नहीं होगी और मेहनतकश, किसान की पूँजीपतियों, जमींदारों और व्यापारियों के जुए से मुक्ति नहीं होगी तब तक कोई सच्ची 'आजादी' नहीं हो सकती।"(सोवियत सत्ता की दूसरी वर्षगाँठ के अवसर पर 1919 में दिये गये भाषण से)

और इस झूठे जनवाद, झूठी आजादी, झूठी समानता को आदर्श जनवाद असली आजादी, आम समानता का नाम देकर कुछ पूँजीपतियों के समर्थक पाखण्डी लोग लम्बी-चौड़ी बातों की आड़ में जनता को धोखा देकर गुमराह करते हैं और अपने को समाजवादी कहकर समाजवाद जनवाद पर कीचड़ उछालते हैं। इस पाखण्ड के खिलाफ हमारा संघर्ष चलता रहेगा। पूँजी के इन दलालों से हम पूछते हैं :

तुम पूँजीवादी जनवाद में आजादी की बात करते हो लेकिन यह क्या नहीं बतलाते कि किस वर्ग के शोषण से किस वर्ग की आजादी, या किस वर्ग के जुए से किस वर्ग की आजादी?

तुम पूँजीवादी जनवाद में समानता की बात करते हो लेकिन यह क्यों नहीं बतलाते कि किन वर्गों के बीच समानता, किन-किन वर्गों के समान अधिकार?

तुम पूँजीवादी जनवाद में जातियों के समान अधिकारों की बात करते हो लेकिन यह क्यों नहीं बतलाते कि किन-किन जातियों के अधिकार समान हैं?

दरअसल गरीब, शोषित, मेहनतकशों के लिए आजादी का मतलब है शोषण से मुक्ति, सामाजिक, राजनीतिक और राष्ट्रीय उत्पीड़न से मुक्ति। अगर आप मेहनतकश जनता के दृष्टिकोण के समर्थक हैं तो आप यह पूछे बगैर नहीं रह सकते कि किसके लिए आजादी? किसके लिए जनवाद? किस वर्ग की किस वर्ग से आजादी और किस वर्ग के लिए जनवाद? किसके लिए जनवाद? अगर कोई जनवाद मेहनतकश को स्वयं अपने नये जीवन का निर्माण करने की आजादी नहीं देता, अगर मेहनतकश अपने अनुभवों के आधार पर सामाजिक संगठन के कठिन प्रश्नों को स्वयं हल करने के लिए आजाद नहीं है तो उसके लिए जनवाद और आजादी जैसे लुभावने शब्दों का खोखली लफ्फाजी से अधिक और कोई मूल्य नहीं रह जाता है। उपरोक्त प्रश्नों का मेहनतकशों के पक्ष में समाधान ही समाजवादी जनतंत्रवाद का सार है।

हम आरम्भ मे कह चुके हैं कि समाजवाद जनवाद और पूँजीवादी जनवाद में जमीन आसमान का अन्तर है। आइये देखें कि मोटे तौर पर समाजवाद जनवाद की वह कौन-सी विशेषताएँ हैं जो उसे पूँजीवादी जनवाद से बुनियादी तौर पर अलग करती है।

***एक***-- समाजवादी जनवाद का आर्थिक आधार है पैदावार के साधनों (कलकारखाने, जमीन आदि) पर समाज का अधिकार। पूँजीवादी जनवाद का आर्थिक आधार है पैदावार के साधनों पर व्यक्तिगत अधिकार। इस मानी में समाजवादी जनवाद एक ऊँचे स्तर का जनवाद है।

***दो***-- समाजवादी जनवाद में सारी जनता देश के राजनीतिक जीवन में सक्रिय भाग लेती और राजनीति के कामों को स्वयं चलाती है। जनता के प्रतिनिधि अगर जनता द्वारा किये गये आदेशों के अनुसार जनता के हक में रासत्ता का काम नहीं चलाते हैं तो जनता उन्हें वापस बुला लेती है, पूँजीवादी जनवाद में जनता को यह अधिकार नहीं होता है। हमारे देश में भी नहीं है।

पूँजीवादी जनवाद में जो एक बार चुन गया वह चुन गया इसीलिए पूँजीवादी जनवाद में अपने प्रतिनिधियों पर जनता कोई नियन्त्रण नहीं रख पाती।

इसके अलावा समाजवादी जनवाद में मजदूर-किसान आदलतों के कामों में भी सक्रिय भाग लेते हैं वहाँ पर जज या मजिस्ट्रेट के साथ अदालत में जनता द्वारा चुने हुए एक या दो जज भी बैठते हैं। हर थोड़े समय के बाद कारखानों, दफ्तरों, गाँवों आदि से लोग जजों और मजिस्ट्रेटों(पंच) के लिए चुनकर आते रहते हैं और पुराने जज, मजिस्ट्रेट समय जाने पर अपने-अपने काम पर कारखानों, दफ्तरों, गाँवों आदि में वापस चले जाते हैं।

पूँजीवादी जनवाद में (हमारे यहाँ भी) जजों, मजिस्ट्रेटों आदि का जनता से अलग एक वर्ग बन जाता है जो अपने आपकों जनता से ऊपर समझने लगता है। इससे जजों आदि में नौकरशाहियत की और मनमानी करने की मनोवृत्ति पैदा हो जाती है। समाजवादी जनवाद में यह सम्भव नहीं हो पाता।

सरकारी योजनाएँ भी अधिकतर कारखानों, खेतों, स्कूलों आदि में जनता ही बनाती है। फिर भी जनता के बीच उन पर बहस होती है और इस प्रकार उसका सही खाका बन जाने पर वे सरकार को दे दी जाती हैं। इसी तरह सरकारी दफ्तरों में बनने वाली योजनाएँ बहस और राय के लिए नीचे जनता में दे दी जाती हैं और वहाँ उन पर सामूहिक बहस एवं आलोचना होती है। इस तरह अन्त में हर सरकारी योजना भी जनता की बन जाती है।

इसके विपरीत पूँजीवादी जनवाद में हर सरकारी कदम और योजना ऊपर से लादी हुई होती है।

***तीन***-- समाजवाद जनता के बुनियादी नागरिक अधिकारों का ऐलान करके

ही तसल्ली नहीं कर लेता वह उनके उपभोग के भी पूरे साधन जनता को देता है। मिसाल के लिए अखबार और छापेखाने प्रेस की आजादी के उपभोग के साधन हैं। अगर हमारे हाथ में अखबार और छापेखाने नहीं हैं तो हमारे लिए प्रेस की आजादी कोई मानी नहीं रखती है। पूँजीवादी जनवाद में प्रेस की आजादी का खूब ढिंढोरा पीटा जाता है लेकिन अखबारों और छोपेखानों पर अधिकार रहता है चंद पूँजीपतियों का। इस पर मार्क्सवाद परिचय माला की चौथी पुस्तक " पूँजीवादी जनवाद" में विस्तार से लिखा जा चुका है। समाजवादी जनवाद में अखबार और छापेखाने जनता की सम्पत्ति होते हैं व्यक्तियों की नहीं। यही बात दूसरे नागरिक अधिकारों के बारे में भी लागू होती है। यह समाजवादी जनवाद की तीसरी विशेषता है।

***चार***-- वर्ग-भेद, ऊँच-नीच, गरीब और अमीर के भेद-भाव से बरी होने के कारण समाजवादी जनवाद जनता के नैतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक एकता और भाइचारे की बुनियाद बनता है।

पूँजीवादी जनवाद में जनता का इस प्रकार की एकता कभी सम्भव ही नहीं हो सकती। पूँजीवादी समाज पलता ही है ऊँच-नीच जाति भेद, रंग भेद, साम्प्रदायिकता, छुआछूत आदि के सहारे पर।

***पाँच***— समाजवादी जनवाद मेहनतकशों का जनवाद है। वह समाज के बहुमत के हितों की रक्षा करता है इसलिए सच्चा जनवाद है। पूँजीवादी जनवाद इसका उलटा है। वह समाज के बहुमत के खिलाफ थोड़े से लोगों के हितों की रक्षा करता है और इसलिए सच्चा जनवाद नहीं है।

***छः***— पूँजीवादी जनवाद में सही मानों में स्त्रियों को पुरुषों को बराबरी नहीं मिलती। पूँजीवादी देशों में महिलाएँ राजनीतिक और सामाजिक कामों में कोई विशेष हिस्सा नहीं ले पाती हैं और अगर कहीं लेती हैं तो इतना कम कि उसकी कोई गिनती नहीं की जा सकती। कारखानों में पुरुषों के बाराबर काम करने पर भी उन्हें कम मजदूरी दी जाती है।

समाजवादी जनवाद में यह सब नहीं होता। वहाँ स्त्रियाँ सभी क्षेत्रों में पुरुषों के बराबर भाग लेती हैं। वहाँ उनका स्थान बाइज्जत और समान होता है, मर्दों की ऐश व गुलामी का नहीं।

***सात***-- समाजवादी जनवाद की एक और मुख्य विशेषता है राष्ट्रों और जातियों की आपस की बराबरी। समाजवादी जनवाद एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र या जाति का शोषण दमन या दलन नहीं करता एक राष्ट्र दूसरे को छोटा या ओछा नहीं समझता। सब देश सब देशों की उन्नति में अपनी उन्नति समझते हैं। वहाँ अमरीका की तरह

हबशी और गैर-हबशी का भेद-भाव नहीं होत, न दक्षिणी अफ्रीका की तरह गोरों और कालों के अलग-अलग क्षेत्र बनाये जाते हैं और न ही साम्राज्यवादी देशों की तरह ताकतवर राष्ट्र कमजोर राष्ट्र को गुलाम बनाकर उनका शोषण करते हैं। समाजवादी जनवाद में हर व्यक्ति को रंग या जाति का भेदभाव किए बगैर समान अधिकार दिया जाता है, हाँ शोषकों के लिए इन अधिकारों का दरवाजा अवश्य बन्द रहता है।

## समाजवादी देशों में जनवाद

ऊपर समाजवादी देशों में जनवादी की जिन विशेषताओं को बतलाया गया है सोवियत संघ तथा अन्य समाजवादी देशों में उन सबको अमली शक्ल दी जा चुकी थी।

समाजवादी देशों की राजसत्ताएँ और सरकारें वहाँ जनता के हितों को रक्षा करती हैं। यही कारण था कि इन देशों के लोग समाजवादी व्यवस्था की रक्षा में जान तक देने को तैयार रहते हैं। सोवियत संघ को ही ले लीजिए वहाँ की जातियों, राष्ट्रीय इकाइयों और उनकी जनता ने पिछली लड़ाई में जिस एकदिली का परिचय दिया वह इस बात का सबूत है कि वह व्यवस्था सही मानी में जनता की व्यवस्था है।

सन् 1952 के आम चुनाव में हामरे देश के कुल मतदाताओं (वोटरों) में से सिर्फ 52 प्रतिशत ने ही वोट दिया था। इनमें से 45 प्रतिशत ने कांग्रेस के पक्ष में और 55 प्रतिशत ने उसके विरोध में वोट दिया। इस प्रकार 1952 में चुनावों के फलस्वरूप बनने वाली कांग्रेस सरकार वोट देनेवालों की, केवल 45 प्रतिशत की सरकार थी। अर्थात अल्पमत की सरकार थी। 1957 की हालत इससे भी गयी-बीती थी। 1962 में कांग्रेस को कुल 44.72 प्रतिशत वोट मिले और 1967 में यह संख्या घटकर 37.87 प्रतिशत रह गयी।

इसके विपरीत सोवियत संघ की सबसे बड़ी पार्लियामेन्ट (जिसे सुप्रीम सोवियत कहते हैं) के 1946 के चुनाव में कुल मतदाताओं के 99.7 प्रतिशत ने भाग लिया। इनमें से 99.18 प्रतिशत ने बोल्शेविक पार्टी को वोट दिया। इसी प्रकार 1950 के चुनाव में कुल वोटरों 99.98 प्रतिशत ने भाग लिया। इनमें 99.7 प्रतिशत ने कम्युनिस्ट पार्टी और उसके द्वारा समर्थित निर्दलीय उम्मीदवारों को वोट दिया। 1966 के चुनाव में कुल मतदाताओं के 91.4 प्रतिशत ने भाग लिया। इसमें से 99. 76 प्रतिशत ने कम्युनिस्ट पार्टी या उसके द्वारा समर्थित उम्मीदवारों के पक्ष में वोट दिया और 345.643 मतदाताओं ने विरोध में वोट दिया।

पूँजीवादी देशों में कहीं-कहीं आपे से अधिक मतदाता वोट देने ही नहीं आते और जो वोट पड़ते हैं वे बहुत से उम्मीदवारों में बँट जाते हैं और जीतने वाला उम्मीदवार पड़नेवाले मतों का दश प्रतिशत पाकर ही जीत जाता है जो कुल मतदाताओं का पाँच प्रतिशत ही होगा। इस प्रकार चुना गया व्यक्ति दरअसल कुल मतदाताओं के 5 प्रतिशत का ही प्रतिनिधि होता है और 95 प्रतिशत पर 5 प्रतिशत की राय थोपकर उनका भी प्रतिनिधि (उनसे पूछे बगैर) बन जाता है।

समाजवादी जनवाद में ऐसा नहीं होता। वहा। अगर एक ही उम्मीदवार है तो भी वोटरों से पूछा जाता है कि वे उसे चाहते हैं या नहीं। अगर बहुमत उस उम्मीदवार को अपना प्रतिनिधि नहीं बनाना चाहता हे तो अकेला रहते भी वह सफल नहीं माना जाएगा। चुने जाने के लिए जरूरी है कि वह आधे से अधिक वोट हासिल करे। सोवियत रूस में 1966 के जिला सोवियतों के चुनाव में तीन उम्मीदवारों को मतदाताओं का स्पष्ट बहुमत नहीं मिल सका था और इसलिए अपने-अपने क्षेत्रों से अकेले उम्मीदवार होते हुए भी उन्हें विजयी घोषित नहीं किया गया।

इन बातों से साफ हो जाता है कि समाजवादी देशों की सरकारें सचमुच जनता की सरकार है। वे दुनिया की सभी प्रकार की सरकारों में सबसे अधिक जनवादी सरकारें हैं जहाँ सभी मेहनतकशों को राज्य में सक्रिय भाग लेने का अवसर मिलता है। वे सरकारें पूरी तरह से जनता के हित में काम करती हैं।

पूँजीवादी देशों में स्थिति इससे बिलकुल भिन्न है। वहाँ ताकत मेहनतकशों के हाथों में नहीं बल्कि चन्द पूँजीपतियों या उनके गुर्गों के हाथ में होती है। पूँजीवादी देशों में सरकार कौन चलायेगा, लोकसभा में बैठकर कानून कौन बनायेगा बड़ी-बड़ी नौकरियाँ कौन लोग सम्भालेंगे, उनकी नियुक्ति और बरखास्तगी कौन करेगा, शिक्षा किस प्रकार की होगी, स्कूल-कॉलेजों के पाठ्यक्रमों में क्या रहेगा क्या नहीं रहेगा आदि सभी बातों का फैंसला थोड़े से धन्नासेठ पूँजीपति या उनके टुकड़ाखोर गुर्गे करते हैं। साथ ही वह मेहनतकशों को यह विश्वास दिलाने की कोशिश करते हैं कि वे लोकसभा में अपनी मर्जी के लोगों को भेजकर जैसी चाहें वैसी सरकार बना सकते हैं पूँजीपति या उनके प्रचारकों का यह दावा सरासर झूठ है। यह हम मार्क्सवाद परिचय माला की चौथी पुस्तक "पूँजीवाद जनवाद" में देख चुके हैं।

---

(**नोट**-- सोवियत संघ तथा अन्य समाजवादी देशों के विघटन के बावजूद यहाँ जो बातें कहीं गयीं हैं वे अपनी जगह पर अब भी सही हैं इसलिए उनमें फेर-बदल नहीं किया गया है ले.)

प्रेस और विचार प्रकट करने की आजादी का भी समाजवादी देशों की जनता पूरा उपभोग करती है। कारखानों, दफ्तरों, सामुहिक खेतों, गाँवों, स्कूलों आदि में दीवारों पर चिपकानेवाले अखबारों (वॉल पेपर्स) का बहुत चलन है। कारखानों के मजदूर अपना अखबार निकालते हैं। यह अखबार कारखाने के मैनेजर से लेकर मजदूर तक की आलोचना करता है, नये सुझाव देता है नयी योजनाएँ बनाकर उन पर अमल करने के तरीके बतलाता है। मजदूर अपनी मजदूर सभाओं और कमेटियों में कारखानों की सब बातों पर बहस करते हैं और अखबार द्वारा अपनी राय जाहिर करते हैं। कारखाने के मैनेजर, मैनेजिंग कमेटी और सरकार इस राय की इज्जत करती है।

इसी तरह तफ्तरों, खेतो, गाँवों, स्कूलों आदि के अखबारों में उनकी समस्याओं पर विचार प्रकट किये जाते हैं। सरकार इन अखबारों में छपी शिकायतों पर खास तौर से ध्यान देती है। सरकार की तरफ से इन अखबारों के लिए कागज, प्रेस आदि की पूरी सुविधा दी जाती है। यह अखबार समाजवादी सरकार की इन्द्रियाँ हैं जिनके द्वारा वह जनता की शिकायतों को सुनती है, उसकी असली हालत को देखती है और उसकी भावनाओं को अनुभव करती है।

भाषण, प्रकाशन और सभा सम्मेलनों की स्वतंत्रता के बारे में यह बात याद रखनी चाहिए कि आलोचना-आत्मालोचना समाजवादी समाज के विकास का एक नियम है। सभी राजकीय और सार्वजनिक संगठनों एवं मेहनतकश जनता के सामूहिक संगठनों के काम आलोचना की भावना से ओत-प्रोत होते हैं। सही समाधानों की तलाश, पुरानी पड़ गयी धारणाओं पर नयी भावना का हावी होना और नयी तथा प्रगतिशील चीज के लिए रास्ता साफ करना समाजवादी आलोचना का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू है। समाजवादी देश का हर नागरिक अपने देश का स्वामी है। इसीलिए वह त्रुटियों के प्रति उदासीन नहीं रह सकता, प्रगति की राह में रुकावट पैदा करनेवाली किसी भी चीज को बर्दाश्त नहीं कर सकता। समाजवाद में जनवादी अधिकारों और स्वतंत्रताओं के व्यापक उपभोग की यही एक गारन्टी है।

महिलाओं को भी जितनी सुविधाएँ और पुरुषों के साथ जितनी बराबरी समाजवादी देशों में हासिल है उतनी और किसी भी पूँजीवादी देशों में नहीं है। समाजवादी देशों की महिलाएँ अपने-अपने देशों के आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक सांस्कृतिक जीवन में पूरा भाग लेती हैं। वे देश के समाजवादी निर्माण के अलग-अलग क्षेत्रों में पूरी कुशलता का परिचय दे रही हैं।

समाजवादी देशों के अलग-अलग राष्ट्रों और उनमें बसनेवाली जातियों को भी समानता का पूरा अधिकार दिया गया है। सच तो यह है कि जिस प्रकार पूँजीवाद कमजोर राष्ट्रों को गुलाम बनाकर उनका शोषण किये बगैर नहीं रह सकता, उसी प्रकार समाजवाद, राष्ट्रों को समानता दिए बगैर नहीं रह सकता। सोवियत संघ में पिछड़े राष्ट्रों को कागज पर बराबरी का अधिकार देकर ही संतोष नहीं कर लिया गया। वहाँ पिछड़ी जातियों को आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक दृष्टि से उन्नत बनाकर उन्हें दूसरों के बराबर लाने का पूरा और सफल प्रयास भी किया गया है।

समाजवादी देशों की राजसत्ताएँ सही मानी में समाजवादी जनवाद पर आधारित जनवादी राजसत्ताएँ हैं, बहुमत की, मजदूरों-किसानों की राजसत्ताएँ हैं।

## समाजवादी जनवाद में व्यक्तिगत अधिकार और स्वतंत्रताएँ

- समाजवादी जनवाद नागरिकों के लिए पूर्ण जनवादी अधिकारों और स्वतंत्रताओं का उपभोग करना सम्भव बनाता है।
- समाजवादी जनवाद नागरिकों के सामाजिक, आर्थिक अधिकारों को, काम पाने, विश्राम और अवकाश पाने, मुफ्त शिक्षा और डॉक्टरी सहायता पाने, बुढ़ापे, बीमारी और अपंगता की हालत में भौतिक सुरक्षा पाने के अधिकारों को ऊँचा स्थान देता है।
- समाजवादी जनवाद काम पाने के वास्तविक और गारन्टीशुदा अधिकार को सच्ची व्यक्तिगत स्वतंत्रता की पहली शर्त मानता है। इस काम को पैदावार के साधनों पर से व्यक्तिगत स्वामित्व को समाप्त करके, समाजवादी आर्थिक व्यवस्था की स्थापना करके, अर्थतंत्र में नियोजन के सिद्धान्त पर अमल करके और उत्पादक शक्तियों को लगातार विकसित करके पूरा किया जाता है इससे हर व्यक्ति का काम पाने का अधिकार सिर्फ कागजी ऐलान न रहकर एक यथार्थ बन जाता है।

## सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व

आमतौर पर लोग जनवाद से एक ऐसे समाज का अनुमान करते हैं जहाँ हर चन्द सालों के बाद विधानसभा या लोकसभा (पार्लियामेन्ट) का चुनाव होता है।

चुनाव में कई एक पार्टियाँ अपने-अपने उम्मीदवार खड़े करती हैं और फिर महीना-पन्द्रह दिन चुनाव के अखाड़े में एक-दूसरे की पटका-पटकी होती है। दूसरे शब्दों में चुनाव के लिए पार्टियों की वैधानिक लड़ाई को ही लोग जनवाद की खास बात या जनवाद का मुख्य सारातत्त्व मान लेते हैं।

तानाशाही से एक व्यक्ति के निरंकुश शासन का अनुमान किया जाता है। जनवाद के मुकाबिले लोग इस प्रकार की तानाशाही को एक अवांछनीय व्यवस्था मानते हैं और ठीक ही मानते हैं।

लेकिन जनवाद और तानाशाही की यह अवर्गीय समझ है-- गैर मार्क्सवादी समझ है। इसी समझ के मातहत पूँजीवादी देशों के बहुत से बुद्धिजीवी पूँजीवादी जनवाद को असली जनवाद समझकर उसके हिमायती बन जाते हैं और सर्वहारा अधिनाकत्व (डिक्टेटरशिप) को तानाशाही समझकर उससे नफरत करने लगते हैं। जनवाद और अधिनायकत्व (तानाशाही) की ऊपर दी गयी समझ गलत है।

वर्गों में बँटें हुए समाज में जनवाद और तानाशाही को वर्गों से अलग देखने की कोशिश करना ही भूल है। वर्गों में बँटें हुए समाज में यह सवाल केवल एक ही तरीके से रखा जा सकता है-- किस वर्ग का जनवाद और किसके लिए जनवाद या किस वर्ग की तानाशाही और किस वर्ग पर तानाशाही है। जो व्यवस्था शोषक वर्ग के लिए जनवाद है वह मेहनतकशों के लिए तानाशाही होगी इसी तरह जो व्यवस्था मेहनतकशों के लिए जनवाद है वह शोषकों के लिए तानाशाही होगी।

सवाल शुद्ध जनवाद या शुद्ध तानाशाही, आम जनवाद या सब पर तानाशाही का नहीं है। सवाल है पूँजीवादी नजवाद या समाजवादी जनवाद का, पूँजीवादी तानाशाही या सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व(तानाशाही) का।

हमारे देश में भी अपने को समाजवादी कहनेवाले बहुत से नेता बुद्धिजीवियों की इसी उलझन पर खेलते हैं। वे पूँजीवादी जनवाद के वर्ग सार को छिपाकर उसके ऊपरी स्वरूप को ही शुद्ध 'जनवाद' या 'आदर्श जनवाद' के नाम से हमारे सामने पेश करते हैं। इस तरह के लोग सर्वहारा एकाधिपत्य के जनवादी सार को छिपाकर सिर्फ 'एकाधिपत्य' शब्द पर कीचड़ उछालते रहते हैं। इस तरह के लोग-जाने-अनजाने जनता के अन्दर पूँजीपति वर्ग के पाँचवे दस्ते का काम करते हैं।

तो फिर आइये सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व के सवाल पर जरा विस्तार के साथ विचार कर लें।

## जनवाद या तानाशाही नहीं, जनवाद और तानाशाही

क्रान्ति का मुख्य प्रश्न होता है सत्ता पर अधिकार। वर्गों में बँटे हुए समाज में शोषक वर्ग सत्ता पर (राज्य पर) इसलिए अधिकार जमाता है कि वह राज्य की ताकत के सहारे बलपूर्वक मेहनतकशों का शोषण कर सके और अगर वे लोग शोषण के खिलाफ किसी प्रकार की आवाज उठाएँ, विरोध करें तो पुलिस और फौज के सहारे उनके विरोध को कुचल सके।

एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग को फौज और पुलिस के सहारे बलपूर्वक कुचल देना तानाशाही है। पूँजीवादी समाज में पूँजीपति वर्ग मजदूरों और किसानों को, उनकी यूनियनों और किसान सभाओं को, उनके आन्दोलनों को फौज और पुलिस के सहारे बलपूर्वक कुचलता है, मजदूरों और किसानों में काम करने वाले कार्यकर्ताओं को जेलों में बन्द करता है और उनकी पार्टी-- कम्युनिस्ट पार्टी पर रोक लगाता है यह मजदूरों किसानों और दफ्तरों आदि में काम करनेवाले मध्यवर्गी बुद्धिजीवियों पर पूँजीपति वर्ग की तानाशाही है।

इस तानाशाही का एक नंगा रूप होता है, जेसे-- पहले इटली, जर्मनी, जापान आदि देशों में था या जैसा अभी हाल तक पाकिस्तान, स्पेन, पुर्तगाल में और इमरजेंसी काल में हमारे देश में था या जैसा इस समय इंडोनेशिया, चिली आदि देशों में है। नंगी तानाशाही में पूँजीपति चुनाव आदि का आडम्बर नहीं मानता और सीधे फौज तथा पुलिस के सहारे हुकूमत करता है।

इस तानाशाही का दूसरा रूप छिपी तानाशाही का है जिसे वह जनतंत्र के नाम से बेचता है। इसमें पूँजीपति वर्ग हर तीन या पाँच साल बाद चुनाव का नाटक करता है और पैसा, प्रचार, डण्डा, गुण्डा, पुलिस, फौज आदि के सहारे जनता को धोखा देकर उससे वोट हासिलकर अपने को जनता का प्रतिनिधि घोषित करता है। फिर जनता की भलाई के नाम पर जनता के ऊपर डण्डे बरसाता है। दूसरे शदों में पूँजीवादी जनवाद में हर पाँच साल बाद जनता से पूछा जाता है कि आनेवाले पाँच वर्षों में पूँजीपति वर्ग के किस प्रतिनिधि के हाथों से डण्डे खाना पसन्द करोगे। यह पूँजीपति वर्ग की छिपी तानाशाही है।

यहाँ जिस बात पर हम जोर देना चाहते हैं वह यह है कि पूँजीवादी समाज में राजसत्ता पर, यानी दमन की मशीन पर हर हालत में पूँजीपति वर्ग का कब्जा रहता है। वह दमन की इस मशीन को, सरकार पर कब्जा करके, कभी नंगे रूप में और

कभी चुनाव की आड़ लेकर छिपे तौपर जनता के खिलाफ इस्तेमाल करता है। इस प्रकार पूँजीपति वर्ग चाहे सीधे फासिस्टी तरीके से हुकूमत करे चाहे तथाकथित जनवादी तरीकों से हुकूमत करे वह हर हालत में मेहनतकशों पर पूँजीपति वर्ग की तानाशाही ही होगी क्योंकि दोनों का उद्‌देश्य है ताकत के सहारे मेहनतकशों को दबाकर रखना।

जब हम पूँजीवादी जनवाद को पूँजीवादी तानाशाही की संज्ञा देते हैं तो पूँजीपतियों के कुछ दलालों, ढिंढोरचियों और उनके लगुवे-भगुवों को बहुत बुरा लगता है। सच बात तो यह है कि सुधारवादियों तथा रूढ़िवादियों के विरुद्ध मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सैद्धान्तिक संघर्ष में सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व का सवाल हमेशा केन्द्रीय सवाल रहा है। संशोधनवादी सर्वहारा वर्ग की तानाशाही की आवश्यकता को ही नहीं मानते हैं। उनके मतानुसार सर्वहारा अधिनायकत्व (डिक्टेटरशिप) के बगैर ही पूँजीवादी जनतंत्र के ढाँचे में ही संसद तथा सरकारी संगठनों के जरिए मेहनतकश वर्ग समाजवाद की स्थापना कर सकता है। इतिहास ने इस विचारों की काल्पनिकता सिद्ध कर दी है। मिसाल के तौर पर इंग्लैण्ड में कई बार मजदूर सरकार आयी पर पूँजीवाद जहाँ का तहाँ बना रहा। समाजवाद के निर्माण का एकमात्र उपाय है सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व या सर्वहारा वर्ग की डिक्टेटरशिप।

**सर्वहारा अधिनायकत्व का राज्य मेहनतकश वर्ग की शक्ति, जिसकी स्थापना समाजवादी क्रान्ति के फलस्वरूप होती है उसका ध्येय होता है समाजवादी समाज का निर्माण और उसका साम्यवाद में रूपान्तरण।**

इस उद्‌देश्य की पूर्ति के लिए सर्वहारा का अधिनायकत्व

- ***राजनीतिक क्षेत्र में--*** मजदूरों और किसानों की यूनियनों को मजबूत बनाता है और जनता के अधिक से अधिक हिस्से को राज्य के कामों में खींचकर सर्वहारा वर्ग की तानाशाही को मजबूत बनाता है।

सर्वहारा अधिनायकत्व का राज्य जनतांत्रिक भी है और अधिनायकवादी भी। वह जनतांत्रिक इसलिए है कि अधिकांश जनता के बहुमत की यानी मेहनतकशों के हितों की रक्षा करता है और यह अधिनायकवादी इसलिए है क्योंकि थोड़े से मुट्‌ठी-भर शोषकों को फिर से शासनतंत्र पर छाने से रोकता है और उनके कुचक्रों को ताकत के जोर से कुचलता है। दूसरे शब्दों में राज्य के सभी कलपुर्जो पर जनता का नियंत्रण सर्वहारा वर्ग की तानाशाही द्वारा ही कायम रखा सकता है।

- ***आर्थिक क्षेत्र में--*** सर्वहारा की तानाशाही पैदावार के साधनों पर निजी

मिल्कियत को खत्म करती है और इस प्रकार मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण को असम्भव बनाती है सामाजिक उत्पादन को नियोजित कर नयी अर्थव्यवस्था का निर्माण करती है।

## सर्वहारा अधिनायकत्व पर लेनिन के विचार

पूँजीवाद के समर्थक कुछ संशोधनवादी-सुधारवादियों ने जब सर्वहारा अधिनायकत्व की सरकार द्वारा बल प्रयोग का विरोधकर सर्वहारा डिक्टेटरशिप पर कीचड़ उछालना शुरू किया तो उन्हें उत्तर देते हुए लेनिन ने कहा था :

"सर्वहारा अधिनायकत्व का, यानी जालिमों (उत्पीड़कों) को कुचलने के लिए मजलूमों (उत्पीड़ितों) के हिरावल को शासक वर्ग के रूप में संगठित करने का परिणाम सिर्फ जनवाद का विस्तार नहीं हो सकता। जनतंत्रवाद के व्यापक विस्तार के साथ ही साथ जो पहली बार धन्नासेठ का जनतंत्रवाद न होकर गरीबों के लिए जनवाद, जनता के लिए जनवाद बनता है, सर्वहारा अधिनायकत्व उत्पीड़कों, शोषकों, पूँजीपतियों की आजादी पर अनेक बन्धन भी लगाता है (राज्य और क्रान्ति)। अपनी बात को और स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा:

"सर्वहारा वर्ग राजसत्ता का इस्तेमाल (अपने वर्ग शत्रुओं की-ले.) स्वतंत्रता के लिए नहीं बल्कि अपने दुश्मनों को दबाये रखने के लिए करता है और ज्यों ही (सबके लिए) स्वतंत्रता की बात करना सम्भव हो जाएगा त्यों ही राजसत्ता जैसी चीज नहीं रह जायेगी।"

"जनता के विशाल बहुमत के लिए जनवाद और जनता के शोषको और उत्पीड़कों का बलपूर्वक दमन यानी जनवाद से उनको बाहर रखना, यही वह परिवर्तन है जो जनवाद में पूँजीवाद से साम्यवाद में संक्रमण काल में होता है।"

"सर्वहारा अधिनायकत्व उस आगे बढ़े हुए वर्ग के अधिनायकत्व के एक संगठनात्मक रूप के अतिरिक्त और कुछ नहीं है जो करोड़ों श्रमिक लोगो को-- जो स्वयं अपने अनुभव से सर्वहारा वर्ग के अनुशासित तथा वर्ग चेतन अग्रदल को अपना सबसे विश्वस्त नेता समझना सीखते हैं-- ऊँचा उठाकर एक नये जनवाद और राज्य के प्रशासन में स्वतंत्र रूप से भाग लेने के स्तर पर पहुँचा देता है।" (राज्य और क्रान्ति)

एंगेल्स का हवाला देते हुए लेनिन ने कहा :

"जब तक सर्वहारा वर्ग को राजसत्ता की जररूरत रहती है तब तक वह उसे स्वतंत्रता के हित में नहीं बल्कि अपने शत्रुओं को दबाये रखने के लिए इस्तेमाल करता है।" (फ्रांस में ग्रहयुद्ध नामक पुस्तक की एंगेल्स द्वारा लिखित भूमिका से)।

सर्वहारा अधिनायकत्व से लेनिन का क्या मतलब था उसे स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा :

"सर्वहारा का अधिनायकत्व का मतलब है धनिकों के लिए जनवाद के स्थान पर गरीबों के लिए जनवाद स्थापित करना। इसका मतलब है अल्पमत के लिए, शोषकों के लिए सभा करने और प्रशासन की आजादी के स्थान पर जनसंख्या के बहुमत के लिए, श्रमजीवी जनता के लिए सभा करने और प्रशासन की आजादी स्थापित करना। इसका मतलब है जनवाद का विराट और विश्व ऐतिहासिक प्रशासन, उसका झूठ से सच में रूपान्तरण, मानवजाति की पूँजी की बेड़ियों से मुक्ति, उस पूँजी से जो सबको, यहाँ तक कि सबसे अधिक 'जनवादी' और जनतंत्रीय बुर्जुआ जनवाद को भी विकृत करता है और तोड़ देती है। इसका मतलब है राजसत्ता द्वारा पूँजीवादी राजसत्ता को सर्वहारा राजसत्ता में स्थानान्तरित करना और यह स्थानान्तरण राजसत्ता के पूर्णतः विलुप्त हो जाने की दिशा में एकमात्र रास्ता है।" (सोवियत समाजवादी जनवाद पृ. 185)।

सर्वहारा डिक्टेटरशिप में और पूँजीपति वर्ग की टिक्टेटरशिप में क्या अन्तर है। इस पर अपने विचार व्यक्त करते हुए लेनिन ने कहा :

"सर्वहारा जनवाद किसी भी पूँजीवादी जनवाद की तुलना में कई लाख गुना अधिक है।" (सर्वहारा क्रान्ति और गद्दार काउत्सकी)

सर्वहारा अधिनायकत्व मानव जातियों को पूँजी के जुए और युद्धों से छुटकारा दिलायेगा।" (सोवियत जनवादी जनवाद पृ.127)

"सर्वहारा अधिनायकत्व अन्य वर्गों के अधिनायकत्व से इस बात में मिलता है कि किसी भी अधिनायकत्व की भाँति उसे भी राजनीतिक प्रभुत्व खोनेवाले वर्ग के प्रतिरोध को बल पूर्वक कुचलने की आवश्यकता जन्म देती है।

"सर्वहारा अधिनाकत्व तथा अन्य वर्गों के अधिनायकत्व में बुनियादी अन्तर--भले ही मध्ययुग के जमीदारों का अधिनायकत्व हो या सभ्य पूँजीवादी देशों में पूँजीपति वर्ग का अधिनायकत्व हो--इस बात में है कि जमीदारों और पूँजीपति वर्ग का अधिनायकत्व आबादी के विशाल बहुमत के, अर्थात श्रमजीवी जनता के प्रतिरोध का बलपूर्वक दमन कर रहा है।"

"इसके विपरीत सर्वहारा अधिनायकत्व शोषकों के, अर्थात आबादी के लघुतम अल्पतम के, ज़मीदारों और पूँजीपतियों के प्रतिरोध का बलपूर्वक दमन है।"(पूँजीवाद जनवाद और सर्वहारा अधिनायकत्व पर थीसिस तथा रिपोर्ट)

"सर्वहारा डिक्टेटरशिप नये वर्ग द्वारा अपने से अधिक शक्तिशाली दुश्मन बुर्जुआ वर्ग-- जिसकी प्रतिरोध शक्ति हार के कारण दस गुना बढ़ जाती है-- के विरूद्ध प्रारम्भ किया गया अत्यन्त दृढ़ और सर्वाधिक निर्मम युद्ध है।' (लेनिन सं. ग्र. खण्ड 3, पृ. 377)

समाजवाद की स्थापना और उसका परिपालन केवल सर्वहारा डिक्टेटरशिप के जरिये ही हो सकता है इस पर जोर देते हुए उन्होंने कहा : "समाजवाद का परिपालन सिर्फ सर्वहारा डिक्टेटरशिप के जरिए ही हो सकता है, जो बुर्जुआ वर्ग अर्थात आबादी की नगण्य संख्या के विरुद्ध हिंसा का प्रजातन्त्र के पूर्ण विकास के साथ संयोजन करता है, अर्थात सभी राजकीय मामलों में और पूँजीवाद को खत्म करने की तमाम जटिल समस्याओं में सारी जनता का सचमुच ही समान और सार्वलौकिक शिरकत के साथ संयोजन करता है। (लेनिन, पी. की एव्सकी को उत्तर। कामगार वर्ग आन्दोल में कठमुल्लापन और संकीर्णवाद के विरुद्ध, पृ. 74)

समाजवादी राज्य अपने सामाजिक आधार को विस्तृत करता है, मजदूरों और किसानों की यूनियनों को मजबूत करता है और जनता के अधिक हिस्से को समाज निर्माण के काम में आकर्षित करता है और हर तरह से सर्वहारा डिक्टेटरशिप का विकास करता है।

## सर्वहारा अधिनायकत्व ही क्यों?

अधिनायकत्व सर्वहारा वर्ग का ही क्यों ही क्यों होगा। किसी दूसरे वर्ग का (किसान या माध्यम वर्ग का) क्यों नहीं हो सकता। इसका उत्तर देते हुए लेनिन ने कहा था कि और किसी वर्ग का अधिनयाकत्व इसलिए नहीं हो सकता क्योंकि किसी भी पूँजीवादी समाज में निर्णायक महत्त्व या तो पूँजीपति वर्ग का या सर्वहारा वर्ग का होता है, जबकि छोटे सम्पत्तिशाली लोग अनिवार्यतः 'शुद्ध' अर्थात वर्ग रहित अथवा वर्गोपरि जनवाद के ढुलमुल यकीन, निसहाय, मूर्ख स्वप्नद्रष्टा बने रहते हैं। क्योंकि ऐसे समाज में से निकलने का, जिसमें एक वर्ग दूसरे वर्ग का उत्पीड़न करता हो, उत्पीड़ित वर्ग के अधिनायकत्व के सिवा और कोई रास्ता नहीं है, क्योंकि केवल सर्वहारा ही पूँजीपति वर्ग को परास्त करने की, उसका तख्ता उलटने की क्षमता रखता

है क्योंकि वही एक वर्ग है जिसे पूँजीवाद ने एकताबद्ध और 'प्रशिक्षित' किया है और जो अपने पक्ष में टटूपुंजिया ढंग से जीवन बिताने वाले श्रमजीवी जन समुदाय के ढुलमुल यकीन तत्त्वों को आकृष्ट करने की, उन्हें अपने पक्ष में खींचने की अथवा उन्हें कम से कम 'तटस्थ' बनाने की क्षमता रखता है।

## पूँजीवादी जनवाद और समाजवादी जनवाद का अन्तर

***1. पूँजीवादी जनवाद--*** विभिन्न आजादियों और अधिकारों की दिखावटी और पाखण्डी घोषणा पर जोर देता है लेकिन दरअसल आबादी के बहुमत को, मजदूरों और किसानों को उनके पर्याप्त उपयोग की सम्भावना नहीं प्रदान करता।

***समाजवादी जनवाद--*** समस्त जनता के लिए अधिकारों और आजादियों की घोषणा को अपना केन्द्र बिन्दु नहीं बनाता बल्कि पूँजी द्वारा उत्पीड़ित और शोषित जनसमूहों के लिए राज्य संचालन में वास्तविक प्रवेश सुनिश्चित करता है। सभाओं और सम्मेलनों के लिए सबसे अच्छी इमारतों, स्थानों व अच्छे छापेखानों और कागज के सबसे बड़े भण्डारों की वास्तविक उपभोग को सुनिश्चित करता है, पूँजीवाद द्वारा मन्द-बुद्धि बनाए गये और डरा-धमकाकर रखे गये लोगों की तालीम सुनिश्चित करता है और ठीक उन्हीं जन समूहों के लिए धार्मिक पूर्वाग्रहों से धीरे-धीरे छुटकारा पाने आदि की वास्तविक सम्भावनाएँ सुनिश्चित करता है। वह मेहनतकश और शोषित जनता के लिए संस्कृति, सभ्यता और जनवाद के लाभों का उपयोग सही मानी में सम्भव बनाता है।

***2. पूँजीवादी जनवाद--*** भाषा, कला एवं साहित्य के विकास को अवरूद्ध करता है, पिछड़े हुए और कमजोर राष्ट्रों तथा जातियों के शोषण और उनके उत्पीड़न को बढ़ाता है।

***समाजवादी जनवाद--*** राष्ट्रों की बराबरी पर बल देकर पिछड़े हुए और कमजोर राष्ट्रों एवं जातियों के शोषण और उत्पीड़न को समाप्त करता हे। सभी भाषाओं को समान स्तर प्रदान कर उन्हें विकसित करता है और कला एवं साहित्य के अबाध विकास की सम्भावनाओं का द्वार खोलता है।

***3. पूँजीवादी जनवाद--*** में कला और साहित्य चन्द पैसेवालों के मनोरंजन का साधन होते हैं और इस प्रकार वह एक सीमित दायरे से बाहर नहीं जा पाते हैं।

***समाजवादी जनवाद--*** में कला और साहित्य पैसेवालों के मनोरंजन का साधन न रहकर आम मेहनतकश जनता के जीवन का अंग बन जाते हैं। वह चाँदी की

सीमाएँ तोड़कर जन-जीवन को समृद्ध बनाने का साधन बन जाते हैं।

***4. पूँजीवादी जनवाद--*** राज्य से धर्म और शिक्षा के सम्बन्ध विच्छेद की घोषण तो करता है लेकिन पूँजी और धार्मिक प्रचार के बीच गहरे सम्बन्धों क कारण कभी भी उस घोषणा को अमली रूप नहीं देता है। पूँजीपति वर्ग जनता की जहालत को, उसके अंधविश्वासों को प्रोत्साहित करता है और उसका फायदा उठाता है।

***समाजवादी जनवाद--*** शोषक वर्गों, जमींदारों और पूँजीपतियों तथा धर्मिक प्रचार के संगठनों के बीच पाये जानेवाले गठजोड़ को ऊँचा उठाकर उन्हें धार्मिक पूर्वाग्रहों और अंधविश्वासों से मुक्ति प्रदान करता है।

***5. पूँजीवादी जनवाद--*** अल्पसंख्यक पूँजीपतियों के लिए जनवाद और मेहनतकश जनता के लिए तानाशाही है। पूँजीवादी जनवाद अल्पसंख्यकों के हित में मेहनतकशों को दबाकर रखने का एक हथियार है जो ऊपर से आकर्षक है लेकिन मार उतनी ही गहरी करता है।

***समाजवादी जनवाद--*** कल तक की शोषित, उत्पीड़ित मेहनतकश जनता के लिए जनवाद और कल के शोषकों के लिए जो आज अपदस्त कर दिये गये हैं, तानाशाही है। समाजवादी जनवाद समाज के बहुसंख्यक मेहनतकशों के हित में अल्पसंख्यक शोषकों को दबाकर रखने का सर्वहारा वर्ग के हाथ का हथियार है।

***6. पूँजीवादी जनवाद--***समाज की अल्संख्यक जनता को बलपूर्वक दबाकर रखता है और उन्हें जनवादी अधिकारों से वंचित करता है, इसलिए वह सच्चा जनवाद नहीं है।

***समाजवादी जनवाद--*** समाज की बहुसंख्यक जनता को पूँजीवादी शोषण और पूँजीवादी उत्पीड़न से मुक्तकर उसे जनवादी अधिकार प्रदान करता है। इसलिए वह सच्चा जनवाद है।

***7. पूँजीवादी जनवाद--*** केवल धनवानों को स्वतंत्रता प्रदान करता है।

***समाजवादी जनवाद--*** शोषकों तथा उनके समर्थक साथियों की स्वतंत्रता का दमन करता है। वह उन्हें शोषण करने की 'आजादी' से दूसरों को भूखा मारकर मोटा होने की 'आजादी' से, पूँजी के शासन को दुबारा स्थापित करने के लिए लड़ने की 'आजादी' से, अपने देश के मजदूरों तथा किसानों के खिलाफ विदेशी पूँजीपतियों से गठजोड़ करने की 'आजादी' से वंचित करता है। पूँजीवादी जनवाद के बरखिलाफ समाजवादी जनवाद मेहनतकशों का जनवाद है और उन्हें ही स्वतंत्रता प्रदान करता है।

# हिंसा-- क्रान्तिकारी बनाम प्रतिक्रियावादी

अक्सर लोग हिंसा या युद्ध (जो बड़े पैमाने पर हिंसा के अलावा और कुछ नहीं है) के सवाल को मनोगतवादी ढंग से देखते हैं। वे उसके कारणों पर जाये बगैर या तो यह कह देंगे कि हिंसा बुरी है और हमें हर हालत में उससे दूर रहना चाहिए, जैसा गांधीवादियों का मत है, या फिर उठते-बैठते बन्दूक की नली के ही गीत गाते रहते हैं। कोई काम उचित है या नहीं इसका फैंसला करने का यह तरीका द्वन्द्ववादी तरीका नहीं है और हम कम्युनिस्टों को, अगर हम गलती करना नहीं चाहते, तो चीजों को परखने का यह तरीका छोड़ना पड़ेगा।

कोई युद्ध या हिंसा उचित है या अनुचित इसका फैंसला करने से पहले हमें उन कारणों की गहराई में जाना पड़ेगा जिनके फलस्वरूप किसी समाज या देश विशेष को युद्ध में उतरना पड़ा या किसी व्यक्ति विशेष को हिंसा का सहारा लेना पड़ा। इस प्रकार से देखने पर पता चलेगा कि हिंसा न हमेशा अच्छी है और न हमेशा बुरी।

इस प्रश्न पर विचार करते समय हमें एक बात का और ध्यान रखना पड़ेगा और वह है अपने वर्ग का ध्यान , क्रान्तिकारी शक्तियों के फायदे और नुकसान का ध्यान। अगर हिंसा के फलस्वरूप क्रान्तिकारी आदर्श को बल मिलता है। तो वह क्रान्तिकारी हिंसा होगी और इतिहास उसके गीत गायेगा। और अगर उस हिंसा का उद्देश्य क्रान्तिकारी शक्तियों को दबाकर शोषकों की सत्ता को मजबूत करना है तो वह प्रतिक्रियावादी हिंसा होगी और उसका विरोध होना चाहिए। वर्गीय शब्दों में अगर कोई हिंसा पूँजीवाद पर चोट करती है, सर्वहारा वर्ग के एकाधिपत्य को (सर्वहारा डिक्टेटरशिप को) मजबूत करती है, सर्वहारा वर्ग के दुश्मनों को कुचलती है, समाजवाद के काम को आसान बनाती है, वर्ग शत्रुओं से क्रान्ति की उपलब्धियों की रक्षा करती है तो वह क्रान्तिकारी हिंसा है उसका समर्थन होना चाहिए। इसके विपरीत अगर हिंसा का उद्देश्य किसी देश के मेहनतकशों के आन्दोलनों को दबाना है या पूँजीवादी व्यवस्था की रक्षा करना है तो वह हिंसा प्रतिक्रियावादी हिंसा होगी क्योंकि वह समाज की विकास गति में बाधक है। ऐसी हिंसा निन्दनीय है और उसका विरोध होना चाहिए।

मिसाल के तौर पर रूसी क्रान्ति को ले लीजिए। 1917 में रूस के मजदूरों, किसानों और सैनिकों ने जारशाही के जुल्मों के खिलाफ हथियार उठाये, उद्देश्य था जारशाही को मिटाकर सत्ता की बागडोर मजदूरों और किसानों के हाथों में सौंपना--

इस उद्देश्य की पूर्ति में वहाँ के मेहतकशों को काफी खून बहाना पड़ा था। वह हिंसा थी लेकिन एक महान उद्देश्य के लिए। दुनिया के तमाम मेहनतकशों ने उसका स्वागत किया, उसे अपना समर्थन दिया और मुक्त कंठ से उसकी प्रशस्ति में गीत गाये, स्वर्णाक्षरों से लिखकर इतिहास में उसे स्थान दिया। इसके बरखिलाफ सर्वहारा की शक्ति को कुचलकर अपनी सत्ता बरकार रखने असफल प्रयास में जार और उसके समर्थकों ने भी जमकर खून बहाया। वह भी हिंसा थी लेकिन एक प्रतिक्रियावादी उद्देश्य के लिए, शोषण की व्यवस्था को कायम रखने के लिए। रूस के मेहनतकशों और उनके साथ दुनिया के मेहनकशों ने उस हिंसा का विरोध किया, जार की ताकत को कुचलकर क्रान्ति को सफल बनाया और जारशाहों को समाप्त कर रूस में समाजवाद की स्थापना की।

युद्ध को ले लीजिए, गत दूसरे विश्वयुद्ध में एक तरफ हिटलर के नेतृत्व में फासिस्ट ताकतें थीं और दूसरी तरफ थीं सोवियत यूनियन के नेतृत्व में फासिस्ट विरोधी ताकतें। हिंसा दोनो ओर से हुई, लेकिन फासिस्ट ताकतों की हिंसा का उद्देश्य था दूसरे देशों को गुलाम बनाकर पूँजीवादी व्यवस्था को मजबूत करना और फासिस्ट विरोधी ताकतों का उद्देश्य था जनवाद तथा आजादी की रक्षा करना। आज लोग हिटलर के नाम पर थूकते हैं क्योंकि उसके द्वारा की जानेवाली हिंसा प्रतिक्रियावादी हिंसा थी और सोवियत द्वारा उठाये गये कदमों के गुणगान करते हैं क्योंकि उसके युद्ध प्रयास और उसकी हिंसा प्रगतिशील या क्रान्तिकारी थी।

वियतनाम के बारे में यही बात लागू होती है। वहाँ एक तरफ थी वियतनाम की अजेय जनता, जो लगभग 25 वर्षों तक लगातार अपने देश की आजादी के लिए लड़ी और दूसरी तरफ थे अमरीकी साम्राज्यवादी दरिन्दे, जो सैगाँव की कठपुतली सरकार की सहयता से देश को गुलाम बनाने के उद्देश्य से भीषण नरसंहार चला रहे थे। हथियारों की सहायता से हिंसा दोनों ओर से हो रही थी। लेकिन विश्व जनमत और दुनिया की तमाम प्रगतिशील ताकतें वियतनामी जनता और उसके द्वारा होनेवाली हिंसा को पूरा समर्थन दे रही थीं और अमरीकी साम्राज्यवादियों का जमकर विरोध कर रही थीं। वे जानती थीं वियतनाम की जनता एक महान एवं पवित्र उद्देश्य के लिए लड़ रही थी और उसके द्वारा होनेवाली हिंसा क्रान्तिकारी हिंसा है।

बंगलादेश को ही ले लीजिए। उस देश को गुलाम बनाये रखने के लिए याहिया खाँ ने हिंसा का सहारा लिया। बंगलादेश की जनता ने उस हिंसा का जवाब हथियार उठाकर दिया। याहिया खाँ गुलामी की ताकतों को मजबूत करना चाहता

था इसलिए उसके द्वारा अपनायी गयी हिंसा जनविरोधी हिंसा थी-- प्रतिक्रान्तिवादी हिंसा। उसका विरोध करना जरूरी था। बंगलादेश की जनता ने भी हथियार उठाये। लेकिन उसकी हिंसा का उद्‌देश्य था जनता के दुश्मनों की ताकत को कुचलना और अपने देश की आजादी हासिलकर उसकी रक्षा करना। वह हिंसा क्रान्तिकारी हिंसा थी इसलिए विश्व जनमत ने उसे समर्थन देकर सफल बनाया।

## क्रान्तिकारी हिंसा की ऐतिहासिक भूमिका

इतिहास में हिंसात्मक राजनीतिक संघर्षों के बहुत से उदाहरण मिलते हैं। इन संघर्षों अथवा लड़ाइयों में अपनायी जानेवाली हिंसा के रूप बदलते रहे, हिंसा के तरीकों में परिवर्तन होते रहे लेकिन हिंसा बनी रही। हिंसा के ऐतिहासिक उदाहरणों को सतही ढंग से या गैर द्वन्द्ववादी ढंग से या अधिभूतवादी ढंग से परखनेवालों में यह भ्रान्त धारणा भी बनी कि हिंसा के जरिए सामाजिक जीवन की घटनाओं को किसी भी दिशा में मोड़ा जा सकता है। इसी भ्रान्त धारणा के तहत पूँजीवादी शासक जनता की हर समस्या का अन्तिम समाधान पुलिस, फौज, लाठी और गोली में तलाश करते आये हैं। वे मुँह से हिंसा का विरोध करते हैं पर अमल में उसी पर भरोसा करते हैं। उनके ख्याल से समाज की व्यवस्था को बदलने के लिए जनता द्वारा अपनायी जानेवाली हिंसा ही खराब है और शोषण की व्यवस्था को कायम रखने के लिए सरकार द्वारा या शासक वर्ग की पार्टी द्वारा अपनायी जानेवाली हिंसा, हिंसा नहीं कहीं जा सकती। वे मौखिक तौर पर हर प्रकार की हिंसा को बुरा कहते हैं लेकिन अमल में सिर्फ क्रान्तिकारी हिंसा का ही विरोध करते हैं।

ऐसी हालत में समाज के प्रगतिशील वर्गों ने हर ऐतिहासिक मोड़ पर जीवन के लुप्तप्राय रूपों को हटाकर नये रूपों को लाने का, पुरानी पड़ गयी सड़ी-गली समाज व्यवस्था को हटाकर नयी व्यवस्था कायम करने का, प्रगतिशील शक्तियों का पथ प्रशस्त करने के लिए क्रान्तिकारी हिंसा का सहारा लिया।

कुछ उदाहरण लीजिए--

दास प्रथा पर आधारित समाज व्यवस्था के दायरे के अन्दर जब उत्पादक शक्तियों का विकास रुक गया तो उसका सारा ढाँचा जर्जर हो उठा और वह अपने ही बोझ से चरमराने लगा, तब समाज के हित में उसका टूटना या तोड़ जाना अनिवार्य हो गया। उस काम को पूरा किये बिना समाज आगे नहीं बढ़ सकता था। उस काम को पूरा किया दास प्रथा के खिलाफ गुलामों की बगावत ने। स्पार्टकस

के नेतृत्व में गुलामी ने हथियार उठाये और हमारे समाज को झकझोर दिया। गुलामी की प्रथा टूटी और एक नये समाज का जन्म हुआ।

इसी प्रकार फ्रांस में सामन्तशाही के खंडहरों को नष्ट करने तथा बुर्जुआ वर्ग के लिए रास्ता साफ करने के लिए जेकोबिन आतंक ने गिलेटिन का सहारा लिया। जैसा कि मार्क्स ने कहा है "पुराने बोझयुक्त समाज के स्थान पर नये समाज की स्थापना के लिए बल प्रयोग एक सहारा है" एंगेल्स ने कहा कि जब आबादी का एक हिस्सा दूसरे पर बन्दूकों और तलवारों के बल पर इच्छाएँ लादता है तब क्रान्ति एक कर्तव्य बन जाता है।

इसी कर्तव्य पालन में रूस के बोल्शेविकों ने जारशाही के खिलाफ हथियार उठाये और जारशाही को उलटकर वहाँ समाजवादी समाज की स्थापना की। हमने देखा कि समाज में बुनियादी परिवर्तन का क़ाम हर मोड़ पर क्रान्तिकारी हिंसा द्वारा ही सम्पन्न हुआ है। अस्तु हम कह सकते हैं कि हिंसा सिर्फ एक सामाजिक बुराई ही नहीं है, उसकी इतिहास में एक क्रान्तिकारी भूमिका भी है।

## हिंसा हमारे सिद्धान्तों के स्वभाव के विरुद्ध है

ऊपर जो कुछ कहा गया है उसका यह मतलब नहीं कि हम कम्युनिस्ट हिंसा के समर्थक हैं। दरअसल मृतप्राय वर्गों के भीषण प्रतिरोध के कारण ही क्रान्तिकारी वर्ग को हिंसा का सहारा लेना पड़ता है। लेनिन के शब्दों में "....हिंसा वास्तव में हमारे सिद्धान्तों के स्वभाव विरुद्ध है।" (सं. ग्र. खण्ड 2) और "कमजोर वर्ग निश्चय ही सत्ता को शान्तिपूर्वक हासिल करना पसन्द करेगा।" (वही खण्ड चार)

उन्होंने कहा "हमारा कहना है कि शोषकों, जमीदारों तथा पूँजीपतियों को कुचलने की आवश्यकता के कारण ही हिंसा के उपयोग की आवश्यकता पैदा होती है। यह लक्ष्य पूरा हो जाने पर हम सारे असाधारण उपकरणों को त्याग देंगे।"(वही खण्ड 30)।

दरअसल प्रतिक्रियावादी शक्तियों की हिंसा के उत्तर में क्रान्तिकारी हिंसा सिर्फ क्रान्तिकारी शक्तियों को कुचलने का या आत्मरक्षा का उपकरण है। वैसे सैनिक गतिविधियों अथवा गृहयुद्ध के रूप में हिंसा अवश्य ही मनुष्य की जिन्दगी को और भौतिक तथा सांस्कृतिक मूल्यों को कुछ हद तक नष्ट कर देती है। मार्क्सवाद, जो मानव जाति के इतिहास में सबसे अधिक मानवीय सिद्धान्त है, के महान सिद्धान्तों के अनुसार यह विनाश उसके स्वभाव के विरुद्ध है।

मार्क्सवाद ने आरम्भ से ही समाज के कायापलट के एक सम्भव तथा वांछनीय रूप के तौर पर शान्तिपूर्ण क्रान्ति के मानवीय विचार को सामने रखा। लेकिन शान्तिपूर्ण उपायों से क्रान्ति का विकास तभी सम्भव है जब शासक वर्ग की अपेक्षा क्रान्तिकारी शक्तियाँ अधिक शक्तिशाली हों और उनमें प्रतिरोध को पंगु बनाने का सामर्थ्य हो। उस हालत में हो सकता है सर्वहारा को संघर्ष के अन्तिम रूप के प्रयोग की आवश्यकता न पड़े।

पूँजीपति, उनके पूँजीवादी विचारक प्रायः मार्क्सवादियों पर हिंसा के प्यासे होने का अभियोग लगाते हैं। ऐसे लोगों को जवाब देते हुए लेनिन ने कहा था कि सर्वहारा शासन का प्रधान लक्ष्य हिंसा नहीं है। सर्वहारा का मुख्य उद्देश्य है सत्ता पर अधिकार। यह काम अगर हिंसात्मक उपायों से दूर रहकर पूरा किया जा सके तो सर्वहारा वर्ग निश्चय ही उसका स्वागत करेगा। लेकिन इतिहास का आज तक का अनुभव बतलाता है कि शोषक वर्ग स्वयं तो हिंसा करता ही है साथ ही सर्वहारा के सामने भी हिंसा के अलावा और कोई रास्ता नहीं छोड़ता। वैसे मेहनकश वर्ग अपने हाथ में अधिकार, विनाश करने के लिए नहीं लेता, बल्कि एक नये समाज के, जो हर प्रकार की हिंसा से मुक्त है, निर्माण के लिए लेता है।

हम कम्युनिस्ट मानवता के पुजारी हैं और सरदार भगत सिंह के शब्दों "हम मनुष्य के जीवन को पवित्र समझते हैं। हम एक ऐसे उज्जवल भविष्य में विश्वास रखते हैं जिसमें प्रत्येक को पूर्ण शान्ति और स्वतंत्रता का अवसर मिल सके। परन्तु क्रान्ति द्वारा सबको समान स्वतंत्रता देने और मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण को समाप्त कर देने के लिए क्रान्ति में कुछ न कुछ रक्तपात अनिवार्य है।" (8 अप्रैल 1921 को दिल्ली असेम्बली में भगत सिंह और दत्त द्वारा फेंके गये परचे से।)

अंत में हिंसा के सामाजिक आधार को भी समझ लेना जरूरी है। सर्वहारा डिक्टेटरशिप का आधार क्या है? वह है विशाल जनता से-- जो कल तक दबी हुई शोषित और पीड़ित थी--प्राप्त समर्थन। पुरानी सभी शासन व्यवस्थाएँ (राजसत्ताएँ और सरकारें) मुट्ठी भर शोषकों (गुलामों के मालिकों, सामन्तों, पूँजीपतियों) के हाथों की कठपुतलियाँ या उनके हाथों में दमन के हथियार के रूप में रही हैं। इसके बरखिलाफ सर्वहारा डिक्टेटरशिप समाज के बहुमत के हाथ में कल के लुटेरों को दबाने का हथियार है। पुरानी शासन व्यवस्थाओं और इस नयी शासन व्यवस्था के बीच बुनियादी अन्तर है।

सर्वहारा डिक्टेटरशिप राजनीतिक संगठन का सबसे जनतंत्रवादी रूप है और

जैसे-जैसे शोषक वर्ग की फिर से सर उठाने की क्षमता समाप्त हो जायेगी और वर्ग समाप्त हो जायेंगे वैसे-वैसे बलपूर्वक समाज के एक हिस्से को दबाकर रखने की आवश्यकता भी समाप्त हो जायेगी और वैसे-वैसे हिंसा की (सरकारी बलप्रयोग की) आवश्यकता भी हमेशा के लिए समाप्त हो जायेगी। क्योंकि लोग 'हिंसा और पराधीनता के बिना ही सामाजिक जीवन के नियमों के पालन करने के आदी हो जायेंगे।' (लेनिन-ए. स्पिकिन द्वारा उद्धृत)

□□□

मार्क्सवाद-लेनिनवाद को पढ़ने-पढ़ाने के दो तरीके हैं। एक तरीका है, उसे कोरे सिद्धान्त की तरह किताबी तौर पर पढ़ना और दूसरा तरीका है, उसे जनता की रोजमर्रा की जिन्दगी से मिलाकर रचानात्मक तौर पर पढ़ना। किताबी तौर पर पढ़ने-पढ़ाने से मतलब है जैसे हमारे देश के स्कूलों में किताबें पढ़ाई जाती हैं या यों कहिए कि रटाई जाती हैं।

इस तरह से पढ़ना-पढ़ाना मजदूरों और किसानों को बड़ा रूखा लगता है। इससे उनके पल्ले कुछ नहीं पड़ता। पढ़ने-पढ़ाने का यह तरीका गलत है।

रचनात्मक तरीका यह है कि मार्क्सवाद की हर एक बात को अपने चारों तरफ की जिन्दगी से मिसालें लेकर उन पर लागू करते चलना। इसके बगैर मार्क्सवाद निर्जीव-सा लगेगा। मजदूर को उसके शहर और कारखानों की मिसालों के साथ समझाने से उसे मार्क्सवाद एक जिन्दा सिद्धान्त लगेगा। तभी उसे मार्क्सवाद में अपनी जिन्दगी के सब सवालों का हल नजर आयेगा। इसे कहते हैं सिद्धान्त को काम और जीवन की कसौटी पर उतारते हुए पढ़ना-पढ़ाना। इसी तरह किसानों को समझाने के लिए उनकी जिन्दगी से मिसालें लेनी चाहिए।

-शिव वर्मा

**गार्गी प्रकाशन**

मूल्य : दस रुपये